^Hkze*

Hkkx &þ

आपीनै् आपु साजिओ आपीन्ै रचिओ नाउ ।।
दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ ।। ;पृ. þöýद्ध

गुरबाणी की उपरोक्त पंक्तियों अनुसार, अकाल पुरूष ने अपने ‘आप’ को सृजन करने के साथ ही अपने ‘प्रकाश’ की रचना की, जिस को गुरबाणी में ‘शबद’ अथवा ‘नाम’ कहा गया है ।

जिस तरह ‘सूरज’ की रोशनी अथवा ‘ध्ूप’ हर तरफ अपने आप, सहज स्वभाव प्रकाशित हो रही है उसी तरह अकाल पुरूष का प्रकाश रूपी ‘शबद’ अथवा ‘नाम’ भी सृष्टि में हर तरफ, ओत-प्रोत, ताने-बाने, कण-कण में प्रकाशित और प्रवृत होकर रवि-रहिआ-परिपूर्ण है ।

सबदे रवि रहिआ गुर रूपि मुरारे ।।
गुर रूप मुरारे तृभवण धरे ता का अंतु न पाइआ ।। ;पृ. ûûûüद्ध

‘सूर्य’ दृष्टमान है और उस की ‘ध्ूप’ भी दृष्टमान है, परंतु अकाल पुरूष अदृष्ट, अगोचर और अपार है, जो केवल अनुभव द्वारा ही बूझा, सीझा और पहचाना जा सकता है ।

जलि थलि महीअलि गुपतो वरतै गुर सबदी देखि निहारी जीउ ।। ;पृ. ÿöझ्द्ध

आपे गुपतु वरतै सभ अंतरि गुर कै सबदि पछाता है ।। ;पृ. ûúÿüद्ध

जिस तरह सूरज की ‘ध्ूप’ में गर्मी, रोशनी, शक्ति, जीवन आदि अनेक ‘गुण’ प्रविष्ट हैं - उसी तरह अकाल पुरूष के प्रकाश रूपी ‘शबद’ अथवा ‘नाम’ में से भी अनेक ‘दैवीय गुण’ सहज-स्वभाव, सदैव प्रकाशित और प्रवृत्त हो रहे हैं, जैसे कि -

आत्म-प्रकाश
तत्-ज्ञान
हुकम

2

अनहद ध्ुनि
अनहद बाणी
कृपा
क्षमा
दया
सुख
आकर्षण
प्रेम
आश्चर्यजनक स्वाद
विस्माद मयी आनंद
महा-रस, आदि

इन सभी आत्मिक गुणों के संग्रह को ही गुरबाणी में ‘नाम’ कहा गया है ।

चाहे गुरबाणी में कई बार इस ‘नाम’ का वर्णन आया है और हम कितने ही समय से इसके विषय में पढ़ते एवं सुनते रहे हैं- परंतु हमें इस ‘नाम-अमोल’ की अभी तक सूझ ही नहीं आई, क्योंकि हम इस को अपनी अल्प बुद्धि् से समझने की कोशिश करते हैं । हमें तो कभी न ही ‘अनुभवी तत्-ज्ञान’ की प्राप्ति हुई है, न ही ‘विस्माद मयी रस’ की अनुभवता हुई है और न ही ‘प्रेम रस’ का स्वाद अनुभव किया है ।

इस गहरे, गंभीर, अथाह, सार, ‘तत्-वस्तु’, ‘नाम’ के विषय को हम ने दिमागी ज्ञान का विषय ही समझा हुआ है ।

परंतु, यह आत्म-प्रकाश रूप ‘नाम’ आत्मिक वस्तु है, जो कि आत्मिक मंडल में प्रकाशित है, और जिस को केवल अनुभव द्वारा ही बूझा एवं अनुभव किया जा सकता है ।

अकाल पुरूष ने इस आत्म मंडल में से ‘दूजा दोइ’ अथवा ‘दूसरा भाव’ बनाया है, जिसे गुरबाणी में यूँ दर्शाया गया है -

एकसु ते सभु दूजा हूआ ।।
एको वरतै अवरु न बीआ ।। ;पृ. øþüद्ध

दूजा भाउ रचाइओनु ध्ै गुण वरतारा ।।..........
सभु किछु तेरा खेलु है सचु सिरजणहारा ।। ;पृ. öþøद्ध

3

दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ ।। ;पृ. þöýद्ध

अकाल पुरूष ने अपनी मौज में यह ‘दूसरी कुदरत’ अथवा ‘मायिकी मंडल’ बनाया । इस मायिकी मंडल में से -

अह्म
मैं-मेरी
दूसरा-भाव
स्वार्थ
ईर्ष्या-द्वेष
वैर-विरोध्
खींचतान
दुख-कलेश
आदि, अनेक मायिकी ‘अनुभव’ उत्पन्न होते और प्रवृत्त होते हैं ।

इस ‘दूसरे भाव’ वाली ‘दुई कुदरत’ की प्रवृत्ति केवल त्रिगुणी मायिकी मंडल तक सीमित है ।

अँध्कार में अनेक ठोकरें, भ्रम-भुलाव और दुख-कलेश आदि उत्पन्न होते हैं ।

ठीक इसी तरह ‘आत्म-प्रकाश’ के ‘तत्-ज्ञान’ के बिना, त्रिगुणी मायिकी अज्ञानता के भ्रममयी अँध्-गुबार में, जीव को अनन्त दुख-कलेश भुगतने पड़ते हैं और वह जो भी ‘कर्म-र्ध्म’ करता है, वह सब अध्ूरे और गलत होते हैं । गुरबाणी में ‘जीव’ की इस मानसिक दशा को यूँ ब्यान किया है -

मनमुख करम कर अहंकारी सभु दुखो दुखु कमाइ ।। ;पृ. øझ्द्ध

हउ हउ करे तै आपु जणाए ।।
बहु करम करै किछु थाइ न पाए ।। ;पृ. ûüझ्द्ध

मनमुख माइआ मोहु है नामि न लगो पिआरु ।।
कूड़ु कमावै कूड़ु संग्राहै कूड़ु करे आहारु ।।
बिखु माइआप ध्नु संचि मरहि अंते होइ सभु छारु ।।
करम ध्रम सुच संजम करहि अंतरि लोभु विकारु ।।
नानक जि मनमुखु कमावै सु थाइ ना पावै दरगहि होइ खुआरु ।। ;पृ. ÿÿüद्ध

जगतु अगिआनी अंध्ु है दूजै भाइ करम कमाइ ।।
दूजै भाइ जेते करम करे दुखु लगै तनि धइ ।। ;पृ. ÿöýद्ध

4

बिनु नावै सभ दुखु संसारा ।।
बहु करम कमाावहि विकारा ।। ;पृ. ûúöüद्ध

‘अँध्कार’ की अपनी कोई हस्ती नहीं है ।

रोशनी की ‘अनुपस्थिति’ को अँध्कार कहा जाता है ।

अकाल पुरूष ही ‘सच’ है और उसमें से उत्पन्न ‘प्रकाश’ अथवा ‘नाम’ भी सच और अटल है । इस आत्म-प्रकाश अथवा नाम के इलावा, बाकी सब कुछ ‘दूसरा भाव’, भ्रम-भुलाव अथवा माया ही है , जिस म े ं सारी स ृष्टि प्रवृत्त है ।

सारे जीव इस कूड़-रूप भ्रम के अँध्कार में इतने व्यस्त, मस्त और संतुष्ट हैं, कि इन को इस कूड़ भ्रम गढ़ के इलावा अन्य किसी उच्च-पवित्रा आत्म-मंडल का ख्याल ही नहीं आता या जान-बूझ कर लापरवाह, बेपरवाह अथवा ‘मचले हुए’ हुए हैं ।

इस तरह हम अपने कूड़ भ्रम की मोह-माया में ही अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ गवाँ रहे हैं ।

गुरबाणी में हमारे इस कूड़-रूप भ्रम के जीवन को यूँ दर्शाया गया है -

कूड़ु राजा कूड़ु परजा कूड़ु सभु संसारु ।।
कूड़ु मंडप कूड़ु माड़ी कूड़ु बैसणहारु ।।
कूड़ु सुइना कूड़ु रुपा कूड़ु पैन्णहारु ।।
कूड़ु काइआ कूड़ु कपडु कूड़ु अपारु ।।
कूड़ु मीआ कूड़ु बीबी खपि होए खारु ।।
कूड़ु कूड़ै नेहु लगा विसरिआ करतारु ।। ;पृ. þöøद्ध

दृसटिमान है सगल मिथेना ।। ;पृ. ûúøýद्ध

जिस तरह लकड़ी की अग्नि में से ध्ुएँ की ‘कालिख’ प्रकट होती है, उसी तरह ‘भ्रम की छाया’ हमारे मन, बुf(, अंतःकरण में गुप्त रूप में चिपकी हुई है और हमारे जीवन के हर पक्ष द्वारा ‘प्रकट-पहारे’ ;प्रत्यक्षद्ध प्रतीत होती है, परंतु अत्यन्त आश्चर्य वाली बात तो यह है, कि चाहे जीव इसी दूसरे भाव, भ्रम, अह्म, घोर अँध् कार और दुविध में, जन्म-जन्मों से विचरण करता आया है और अभी भी इसी अँध्कार अथवा भ्रम में प्रवृत्त है । परंतु, जीव को इसके विषय में सूझ ही नहीं और इस के विषय में जानने की ‘आवश्यकता’ ही नहीं प्रतीत होती और न ही हम अपने ‘भ्रम’ को मानने के लिए तैयार हैं ।

5

दूसरे भाव वाली इस ‘भ्रम की छाया’ के विषय में गुरबाणी यूँ प्रकाश डालती है-

भरमे भूला सभु जगु फिरै मनमुखि पति गवाई ।। ;पृ. þüÿद्ध

भरमे भूला फिरै संसारु ।।
मरि जनमै जमु करे खुआरु ।। ;पृ. ÿöúद्ध

जगतु अगिआनी अंध्ु है दूजै भाइ करम कमाइ ।। ;पृ. ÿöýद्ध

वरतु नेमु निताप्रति पूजा ।।
बिनु बूझे सभु भाउ है दूजा ।। ;पृ. øþûद्ध

नानक सचा एकु है दुहु विचि है संसारु ।। ;पृ. öÿúद्ध
हमारे -

परिवारिक जीवन
भाईचारिक जीवन
व्यवहारिक जीवन
राजनीतिक जीवन
धर्मिक जीवन
सामाजिक जीवन
सभ्यता
मनुष्यता
को भी, इसी ‘भ्रम-भुलाव’ की ‘रंगत’ या ‘कलम’ चड़ी हुई है । मनुष्यता की यह ‘नवीन सभ्यता’ ;उवकमतद बपअपसप्रंजपवदद्ध अपने शिखर तक पहुँच चुकी है और इस पर हमें अति गर्व है ।

परंतु इस सभ्यता की मानसिक और वैज्ञानिक प्राप्तियाँ, मायिकी भ्रम-भुलाव की सीमा के अंदर ही प्रवेश, प्रवृत्त और सीमित हैं और इनका आत्मिक मंडल के साथ कोई संबंध् नहीं है ।

इस का प्रत्यक्ष सबूत यह है, कि जैसे-जैसे हमारी सभ्यता विकसित होकर नवीन होती जाती है - वैसे-वैसे हमारा सदाचार और ‘मनुष्यता’ गिरती जाती है और साथ ही इस की कदर-कीमत भी कम होती जा रही है ।

इसी कारण संसार में -

ईर्ष्या-द्वेष

6

वैर-विरोध्
विकार
बे-ईमानी
चोर-बाज़ारी
जुल्म
आदि, अवगुण बढ़ते जा रहे हैं ।

इस नवीन सभ्यता की आध्ुनिकता द्वारा मनुष्यता के हृदयों के अंदर -

दया
क्षमा
सेवा
परोपकार
मिलवर्तन
ईमानदारी
विश्वास
आस्तिक्ता
की बढ़ोतरी होनी चाहिए थी, परंतु बहुत आश्चर्य और अफसोस की बात है, कि ठीक इसके विपरीत हमारी ‘नवीन सभ्यता’ की रोशनी के साथ ‘मनुष्यता’ पिछले ज़माने से भी -
श् ाक्की
स्वार्थी
विश्वास-घाती
अत्याचारी
अश्र(क
झूठी
नास्तिक
विकारी
हो रही है ।

इस तरह विश्व में -
अशांति

7

Mj
खींच-तान
हेरा-फेरी
fj'or
Lexfyax
तंगदिली
अत्याचार
हो रहे हैं और बढ़ते जा रहे हैं ।

‘मनुष्यता’ की यह मानसिक गिरावट हमारी -

नवीन सभ्यता
आध्ुनिकता
विद्वता
विज्ञान
फिलासफी
र्ध्मों
र्ध्म-उपदेशों
र्ध्म-प्रचार
के ‘बावजूद’ बढ़ती जा रही है और ‘मनुष्यता’ अपनी तबाही की तरफ अन्धध्ुंध्दौड़ती जा रही है ।

जीव के सुधर और कल्याण के लिए अनन्त -

सभा-सुसाइटियाँ
सुधर-संस्थाएँ
स्टडी-सर्कल
लाइब्रेरियाँ
भाईचारिक सम्मेलन
शान्ति सभाएं
धर्मिक समागम
यू. एन. ओ ;न्ण्छण्व्द्ध
यू-नैस-को ;न्छम्ैब्व्द्ध
जैसी अनेक महत्तवपूर्ण सुधरक संस्थाएँ काम कर रही हैं, जिन पर अनन्त खर्जा, मेहनत और समय लगता है । परंतु देखने में आता है, कि इन सभी संप्रदाओं का

8

‘मानवता’ पर बहुत कम या थोड़े समय के लिए ही असर होता है और संसार की सम्पूर्ण मानसिक और धर्मिक हालत गिरती जा रही है ।

जीव की इस गंभीर और भयानक अवस्था का मूल कारण मायिकी ‘भ्रम’ ही है । ‘मनुष्यता’ की इस दुर्दशा को गुरबाणी में यूँ दर्शाया गया है -

भादुइ भरमि भुलाणीआ दूजै लगा हेतु ।।
लख सीगार बणाइया कारजि नाही केतु ।। ;पृ. ûýþद्ध

पड़ि पड़ि भूलहि चोटा खाहि ।।
बहुतु सिआणप आवहि जाहि ।। ;पृ. öøöद्ध

तै नर किआ पुरानु सुनि कीना ।।
अनपावनी भगति नही उपजी भूखै दानु न दीना ।।
कामु न बिसरिओ क्रोध् न बिसरिओ लोभु न छूटिओ देवा ।।
पर निंदा मुख ते नही निफल भई सभसेवा ।।
बाट पारि घरु मूसि बिरानो पेटु भरै अप्राध्ी ।।
जिहि परलोक जाइ अपकीरति सोई अबिदिआ साध्ी ।।
हिंसा तउ मन ते नही छूटी जीअ दइआ नही पाली ।।
परमानंद साध्संगति मिलि कथा पुनीत न चाली ।। ;पृ. ûüÿýद्ध

स्कूलों-कालेजों में खेल होते हैं, तो उन में अलग-अलग स्कूलों-कालेजों के बच्चे हिस्सा लेते हैं । चाहे यह खिलाड़ी खेलों में सारा ध्यान और जोर लगा देते हैं, परंतु उनका जीवन मनोरथ अथवा जीवन-सेध् केवल ‘खेल’ ही नहीं, बल्कि पढ़ाई करके जीवन को कामयाब बनाना है ।

इसी तरह इस त्रि-गुणी मायिकी मंडल में सारा संसार ही बड़ा मायिकी ‘खेल-अखाड़ा’ है, जिस में सारे जीव ‘दुई कुदरत’ अथवा ‘बड़े-खेल तमाशे’ में खेल कर विचर या भाग ले रहें हैं ।

इस ‘बड़े-खेल-तमाशे’;विराट नाटकद्ध में अकाल पुरूष जीवों के द्वारा अपने आप ही खेलता है, और दूसरी तरफ अपने आप ही ‘अलग’ होकर, अपने बनाए हुए, ‘बड़े-तमाशे’ को देखकर प्रसन्न हो रहा है । यह सब चमत्कारिक या करामाती अकाल पुरूष के अपने अलौकिक, आश्चर्यजनक लीलाएँ अथवा भेद हैं, जिस को

9

‘जीव’ अपनी सीमित बुद्धि् द्वारा समझने में असमर्थ है ।

आपे ही सभु आपि है पिआरा आपे थापि उथापै ।।
आपे वेखि विगसदा पिआरा करि चोज वेखै प्रभु आपै ।। ;पृ. öúÿद्ध

जिनि उपाई रंगि रवाई बैठा वेखै वखि इकेला ।। ;पृ. झ्üýद्ध

आपे खेल करै सभि करता ऐसा बूझै कोई ।। ;पृ. ööýद्ध

हम अपने भ्रम-भुलाव वाले मायिकी मंडल के विराट-नाटक में इतने गलतान, खचित, मस्त अथवा ‘खोये’ हुए हैं, कि इस ‘मायिकी तमाशे’ को ही अपना - जीवन उद्देश्य
जीवन मनोरथ
जीवन सेध्
जीवन मंज़िल
समझे बैठे हैं ।

इस तरह मायिकी ‘भ्रम-भुलाव’ में इस आत्मिक भेद को भूल जाते है, कि हम अकाल पुरूष के ‘आत्मिक खिलाड़ी’ हैं और इस त्रि-गुणी मायिकी मंडल के इलावा, हमारा कोई और भी -
उच्च
पवित्रा
सुंदर
अच्छा
रसदायक
प्रेम-मयी
जीवन मनोरथ, जीवन-सेध् और जीवन मंज़िल है ।
ऐसे ऊपरी, अध्ूरे और गलत -

ख्यालों
निश्चयों
विश्वास
को ही गुरबाणी में ‘भ्रम’ कहा गया है, जो कि हमारे मन-चित-बुद्धि्-अंतःकरण अथवा रग-रग में इतना गहरा ध्ँसा, बसा और समाया हुआ है, कि हम इस मानसिक

10

‘भ्रम’ का ही ‘स्वरूप’ बन चुके हैं और इस ‘भ्रम’ को ही सच करके माने हुए हैं ।

दूसरे शब्दों में जन्म-जन्मों से ‘जीव’ को ‘दूजै दोइ’ अथवा ‘दूसरे भाव’ के अभ्यास द्वारा ‘भ्रम की छाया’ इतनी गहरी और गाढ़ी हो चुकी है, अथवा भ्रम की ‘परत’ चड़ी हुई है, कि जीव की -

सोचनी
ख्याल
विचार
मनोभाव
विश्वास
कर्म
र्ध्म
परमार्थ
आदि, की तहों के अंदर इसी ‘भ्रम की छाया’ चिपकी रहती है । यह मानसिक भ्रम, हमारे जीवन के हर पक्ष में सहज-स्वभाव अपने आप प्रकट और प्रवृत्त हो रहे हैं ।

आश्चर्य की बात यह है, कि चाहे यह ‘भ्रम की छाया’ हमारे जीवन का ‘अंग’ ही बन चुकी है, परंतु हम अपने ‘भ्रम’ को मानने के लिए तैयार ही नहीं और इसी ‘भ्रम’ को सम्पूर्ण सच मानकर इसी में पूरी तरह संतुष्ट और गलतान हो रहे हैं ।

इस लिए बावजूद इतने -
र्ध्मों
धर्मिक ग्रंथों
धर्मिक उपदेशों
के, जीव इस ‘भ्रम’ के अँध्कार में से निकलने को तैयार ही नहीं । पहले तो धर्मिक उपदेशों को हम गौर से सुनते ही नहीं, यदि सुनते भी हैं, तो बाहरी मन से ही स्वीकार करते हैं ।

बेद पुरान सिमृति के मत सुनि निमख न हीए बसावै ।। ;पृ. öýýद्ध

गुरमति सुनि कछु गिआनु न उपजिओ

11

पसु जिउ उदरु भरउ ।। ;पृ. öøÿद्ध

वेदा महि नामु उतमु सो सुणहि नाही फिरहि जिउ बेतालिआ ।। ;पृ. öûöद्ध

इसी तरह ‘पाप-पुण्य’ के विषय में भी हमें भ्रम है, जिस कारण अलग-अलग देशों में भिन्न-भिन्न लोगों के पाप-पुण्य की भिन्न-भिन्न ‘कसौटियाँ’ हैं । उदाहरण के रूप में एक तरफ ‘जीव हत्या’ को दीर्घ पाप समझा जाता है, दूसरी तरफ जीव की कुरबानी देनी पुण्य ही नहीं बल्कि परमार्थ का विशेष अंग माना जाता है । हमारी कचहरियों में जिस तरह कई दर्जों के ‘जुर्म’ गिने जाते हें और उन जुर्मों के पीछे कारण या भावना का ख्याल रखा जाता है, उसी तरह हमारे मानसिक पापों के भिन्न-भिन्न दर्जे हैं ।

हमारे पाप तीन किस्मों में बाँटे जा सकते हैं -

1. शारीरिक पाप - चोरी, यारी, मार-कुटाई आदि ।

2. मानसिक पाप - हमारे मन की मलीनता और गिरावट से उत्पन्न होते हैं, जैसे कि ईर्ष्या, द्वेष, वैर-विरोध् आदि ।

3. आत्मिक पाप - संतों, महा पुरूषों और भक्तों की निंदा करनी, दुख देना और जिज्ञासुओं के उ(म को विरोध् से दबाना या बदनाम करना अथवा गलतफहमियों में डालकर जीवन तबाह करना आदि ।

वास्तव में साथ लिखे ‘हुक्म’ से बे-सुर होकर ही अह्म के अध्ीन निम्न कोटि के ख्याल, आशा-मनसा, एवं तृष्णा उत्पन्न होते हैं, जो कि समस्त निम्न कर्मों एवं पापों का मूल ‘कारण’ है ।

मनुष्य ‘अपनी मर्जी’ से निम्न रूचियों के आध्ीन होकर ‘पाप’ कमाता हुआ, अपना मन इतना मलीन कर लेता है कि वह मैले मन द्वारा ‘कर्म-ब(’ हो जाता है और उस से स्वतः ही अपने आप ‘पाप’ होते रहते हें । आखिर उस के पापों की रूचि अति तीव्र एवं गहरी होकर, उसके तन-मन-अंतःकरण में ध्ँस-बस कर रस रूप हो जाती है और वह अपने आप रसातल की तरफ बहता जाता है एवं अपनी तबाही का कारण बनता है ।

यह सारे निम्न रूचियों से उत्पन्न ‘पाप’, माया के भ्रम-भुलाव में ‘अह्म’ एवं ‘मैं-मेरी’ का प्रतीबिंब या प्रकटाव हैं ।

अकाल पुरूष की गैर हाज़री या भूल से ही माया का ‘भ्रम’ उत्पन्न होता है ।

इस विचार का अन्तिम निष्कर्ष या निचोड़ यह है, कि अकाल पुरूष की ‘भूल’

gh ^iki* vkj ^;kn* gh ^i.;* g A

dfy efg ,gk iu x.k xkfon xkfg AA (i· öÖü)

इसी तरह 'यम' के विषय में भी हमें 'भ्रम – भुलाव' है और हम ने कई डरावनी शक्लों वाले मनो – कल्पित राक्षस, दैत्य, देवी – देवते बनाए हुए हैं। दूसरी तरफ हमारा निश्चय है कि प्रभु की दरगाह में कोई दफतर होगा जिस में हमारे लेख लिखे जाते हैं और अन्त में मौत के बाद 'दफतर' लगाया जाता है और फैसले होते हैं।

वास्तव में यह सारा खेल – अखाड़ा 'सूक्ष्म इलाही हुक्म' का प्रसार एवं सिलसिला है, जिस को प्रभु अपने 'हुक्म' द्वारा ही चलाता है।

हुकमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई ।।.......
हुकमै अंदरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ ।। (पृ. १)

हुकमी सृसटि साजीअनु बहु भिति संसारा ।। (पृ. ७८६)

अन्तर – आत्मा में हुक्म की सूक्ष्म स्व – चालित शक्ति द्वारा, हमारे अच्छे – बुरे ख्यालों या कर्मों के लेख, अंतःकरण रूपी कम्प्यूटर में साथ ही साथ अंकित हो जाते हैं।

यह अंतःकरण के लेख या रंगत ही हमारा 'चाल – चलन', स्वभाव या भाग्य हैं, जो हर एक छोटे से छोटे अच्छे – बुरे ख्यालों या कर्मों से अपने – आप, अनजाने ही बदलते रहते हें, जिन का नतीजा साथ – साथ या समय उपरान्त भुगतना पड़ता है।

अब के कर्म ही अगले पल में 'पूर्व कर्म' बन जाते हें, जो कि धीरे – धीरे 'धुर कर्म' या 'भाग्य' बन जाते हैं, दूसरे शब्दों में हमारे अच्छे या बुरे कर्मों का निपटारा, ईश्वरीय हुक्म अनुसार, आने वाले समय या जन्म में, दुख या सुख भुगतने के साथ ही होता है। इस लिए स्वर्ग एवं नर्क सब इसी कुदरत में मौजूद हें।

मन मूरख काहे बिललाईऐ ।।
पूरब लिखे का लिखिआ पाईऐ ।। (पृ. २८३)

दिनु राति कमाइअड़ो सो आइओ माथै ।। (पृ. ४६१)

कुदरति तखतु रचाइआ सचि निबेड़णहारो ।। (पृ. ५८०)

मतु को जाणै जाइ अगै पाइसी ।।
जेहे करम कमाइ तेहा होइसी ।। (पृ. ७३०)

'जेहा बीजै सो लुणै' वाली हकीकत को मन – वचन – कर्म द्वारा दृढ़ करके, अहम – रहित जीवन बनाने से जिज्ञासु के सारे लेखे धीरे – धीरे खत्म हो जाते हैं।

संतन मो कउ पूंजी सउपी तउ उतरिआ मन का धोखा ।।
धरम राइ अब कहा करैगो जउ फाटिओ सगलो लेखा ।। (पृ. ६१४)

धरम राइ दरि कागद फारे जन नानक लेखा समझा ।। (पृ. ६६८)

तब तो हमारा मन अथवा अंतःकरण ही धर्मराज का दफ़्तर है। परंतु, हम **'अकल लतीफ'** होते हुए भी **'काले लेख'** लिखते जा रहे हैं। अपने विचारों, ख्यालों, मनोभावों और कर्मों की जाँच करके मनुष्य स्वयं ही फैसला कर सकता है कि मेरा लेखा कैसा है।

यह सारी 'गुप्त' ईश्वरीय पैरवी या कार्यवाही 'हुक्म' अनुसार चुप – चाप हो रही है, जो सच्चो – सच और **'धर्म – न्याय'** है।

चंगिआईआ बुरिआईआ वाचै धरमु हदूरि ।। (पृ. ८)

नानक सचा सचि नाइ सचु सभा दीबानु ।। (पृ. १२४१)

इस लिए स्पष्ट है, कि हमारी 'सुरति' या **'मन' ही 'चित्र – गुप्त'** है, जो कि हमारी जिंदगी की फिल्म अथवा 'चित्र' गुप्त रूप में दर्ज़ कर लेता है।

स्वर्ग – नर्क के विषय में भी गुरबाणी में यूँ निर्णय किया गया है –

सुरग बासु न बाछीऐ डरीऐ न नरकि निवासु ।।
होना है सो होई है मनहि न कीजै आस ।। (पृ. ३३७)

कवनु नरकु किआ सुरगु बिचारा संतन दोऊ रादे ।।
हम काहू की काणि न कढते अपने गुर परसादे ।। (पृ. ६६६)

कबीर सुरग नरक ते मै रहिओ सतिगुर के परसादि ।।
चरन कमल की मउज महि रहउ अंति अरु आदि ।। (पृ. १३७०)

उपरोक्त विचारों द्वारा स्पष्ट होता है कि –

हम निम्न और बुरे कर्मों द्वारा **यम के वश** में पड़ते हैं।

निम्न कर्म हमारी **निम्न रूचियों** से प्रकट होते हें।

निम्न रूचियाँ, हमारे अंतःकरण की **'रंगत'** और बाहरी **'कुसंगति'** से बनती है ।

'अंतःकरण' हमारे पिछले कर्मों और अब के **ख्यालों** अनुसार बनता है ।

निम्न ख्याल या कर्म अहम के अँधकार में से उत्पन्न होते और पलते हैं ।

'अह्म' त्रिगुणी मायिकी मंडल का **भ्रम – भुलाव** है ।

'माया' अकाल पुरूष की अनुपस्थिति या भूल में से उत्पन्न हुई है ।

'परमेश्वर' को 'भूलना' या 'विमुख' होना ही यम के वश पड़ना है ।

जिसु खसमु न आवै चिति तिसु जमु डंडु दे ॥ (पृ. ६६४)

मन कहा बिसारिओ राम नामु ॥
तनु बिनसै जम सिउ परै कामु ॥ (पृ. ११८६)

जिनी नामु विसारिआ बहु करम कमावहि होरि ॥
नानक जम पुरि बधे मारीअहि जिउ सुन्ही उपरि चोर ॥ (पृ. १२४७)

जब हम नाम की रोशनी या प्रभु की याद में से निकलरि, मायिकी अन्धेरी दुनिया यानि 'प्रभु की भूल' में बसते हें, तो हमारा अँधकर – रूपी मायिकी 'यम' के साथ वास्ता पड़ता है, और हम यम की सरकार के नीचे आ जाते हें और **यम के चीरे** या लेखे में विचरण करते हैं यम की 'फाँसी' 'गले' डल जाती है, जिस कारण हम 'यम' के डंक जीते जी और मर कर भी सहते रहते हैं ।

त्रि – गुणी मायिकी मंडल के **'अवगुण'** और आत्मिक – प्रकाश मंडल के 'गुण', एक – दूसरे के **विरोधी, विपरीत और उल्टे हैं** । इन दोनों मंडलों को समझ योग्य करने के लिए निम्नलिखित वर्णन दिया जाता है –

आत्म मंडल के प्रकाश का निरगुण स्वरूप	**मायिकी मंडल के 'भ्रम' का सरगुण और मानसिक स्वरूप**
एको एक है	अनेकता है
सच है	कूड़ है
अविनाशी है	नाशवंत है
तत् – ज्ञान है	खोखला दिमागी ज्ञान है
अनंत है	सीमित है
सूक्ष्म है	स्थूल है

अनाम है	अनेक नाम हैं
बख्शिश रूप है	दंड देने वाला है।
दाता है	मंगता है
मिठ बोलड़ा है	कड़ुवा बोलना है
गुणों का स्त्रोत है	अवगुणों का 'झरना' है
प्यार है	नफरत है
मिलाप है	वियोग है
आकर्षण है	तिरस्कार है
सतयुग है	कलयुग है
पर – स्वार्थी है	निज – स्वार्थी है
'हथहु दे कै भला मनावै' है	'खुसि खुसि लैदा वसतु पराई' है
'जम नेड़ न आवै' है	'जम करे खुआरी' है
ईश्वरीय मर्जी है	अपनी अपनी मर्जी
सदा सुख है	सदा दुख है
सदा प्रकाश है	भ्रम का अँधकार है
अटल महल है	'धुँऐ का पहाड़' है।

इस वर्णन से स्पष्ट है कि –

अकाल पुरूष से अश्रद्धक या विमुख होना	–	भ्रम है।
दृष्टमान झूठी दुनिया को सच समझना	–	भ्रम है।
अह्म अथवा 'मैं – मेरी' में विचरण करना	–	भ्रम है।
विषय – विकारों में गलतान होना	–	भ्रम है।
मोह – माया में फँसना	–	भ्रम है।
ईर्ष्या – द्वेष और वैर – विरोध में विचरण करना	–	भ्रम है।
अमूल्य जीवन को झूठी माया में बहाना	–	भ्रम है।
रूखा – सूखा दिमागी ज्ञान घोटना	–	भ्रम है।
अह्म में किए परोपकार एवं नेकियाँ	–	भ्रम है।
दिमागी स्तर के निश्चय अथवा श्रद्धा	–	भ्रम है।
मनोकल्पित दिमागी धार्मिक प्राप्तियाँ	–	भ्रम है।
'दैवीय जीवन' से अनजान और बेपरवाह रहना	–	भ्रम है।
अकाल पुरूष को बिसारना या भूलना	–	भ्रम है।

अनिक जतन निग्रह कीए टारी न टरै भ्रम फास ॥
प्रेम भगति नही ऊपजै ता ते रविदास उदास ॥ (पृ. ३४६)

कथनी कहि भरमु न जाई ॥
सभ कथि कथि रही लुकाई ॥ (पृ. ६५५)

बहुतु सिआणप भरमु न जाए ॥ (पृ. १०२५)

मनु कठोरु दूजै भाइ लागा ॥
भरमे भूला फिरै अभागा ॥ (पृ. १०६१)

धंधा करत सगली पति खोवली भरमु न मिटसि गवारा ॥ (पृ. ११२७)

ऐसे अनेक **'मानसिक भ्रम'** हमारे साथ पल – पल, क्षण – क्षण, दिन – रात, सारी उम्र **'प्रेत' की भांति** चिपके रहते हैं और इस भ्रम गढ़ में ही हम जन्म – जन्मों से मायिकी जीवन में प्रवत्त होते और पलचते उलझते आए हैं।

माइआ मोहि कड़े कड़ि पचिआ ॥
बिनु नावै भ्रमि भ्रमि भ्रमि खपिआ ॥ (पृ. ११४०)

मनमुख दुखीए सदा भ्रमि भुले तिन्ही बिरथा जनमु गवाइआ ॥ (पृ. ८५२)

मानवता की ऐसी **भ्रम – मयी दुर्दशा को देखकर**, गुरू साहिबान ने गुरबाणी द्वारा जीव को यूँ ताड़ना की है –

रे नर इह साची जीअ धारि ॥
सगल जगतु है जैसे सुपना बिनसत लगत न बार ॥
बारू भीति बनाई रचि पचि रहत नही दिन चारि ॥
तैसे ही इह सुख माइआ के उरझिओ कहा गवार ॥
अजहू समझि कछु बिगरिओ नाहिनि भजि ले नामु मुरारि ॥
कहु नानक निज मतु साधन कउ भाखिओ तोहि पुकारि ॥ (पृ. ६३३)

छोडि जाहि से करहि पराल ॥ कामि न आवहि से जंजाल ॥
संगि न चालहि तिन सिउ हीत ॥ जो बैराइ सेई मीत ॥
ऐसे भरमि भुले संसारा ॥ जनमु पदारथु खोइ गवारा ॥ रहाउ ॥
साचु धरमु नही भावै डीठा ॥ झूठ धोह सिउ रचिओ मीठा ॥
दाति पिआरी विसरिआ दातार ॥ जाणै नाही मरणु विचारा ॥
वसतु पराई कउ उठि रोवै ॥ करम धरम सगला ई खोवै ॥